International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 147-148

मध्य गंगा घाटी में कार्यरत कुम्भकारों का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन

डॉ0 केशरी नन्दन मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), हेमवती नन्दन बहुगुणा राजकीय पी.जी. कालेज, नैनी, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

कुम्भकार वस्तुतः मानव समाज के प्रथम वैज्ञानिक एवं मानवीय सभ्यता के प्रथम पुष्प हैं, जिन्होंने मिट्टी की अपनी कला–कृतियों के द्वारा मृद्भाण्ड निर्माण एवं मूर्ति कला के द्वारा आदिकाल से ही मानव समाज को सभ्यता की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है। अपनी सृजनात्मक कला के द्वारा इन्होंने भारत के प्राचीन गौरव, प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के धरोहर को प्राचीन ग्रंथो की भांति अक्षुण रखकर संजोया है, जिसकी गरिमा आज भी मोहनजोदड़ों, हड़प्पा तथा नालंदा की खुदाईयों से प्राप्त मिट्टी के पात्रों और उनके अवशेषों से प्रस्फुटित होती है। जिसके कारण भारतीय समाज ने इन्हें सभ्यता के आदिकाल से ही 'पंडित' तथा 'प्रजापति' की उपाधि से विभूषित किया है।

यद्यपि ग्रामीण आर्थिक जीवन के एक भाग के रूप में होते हुए विभिन्न कारणों के वश अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वाले कुम्भकारों के इस समुदाय को इस देश की पारम्परिक कारीगरों के महत्त्वपूर्ण समूह के रूप में उल्लेखनीय हैं। किसी कुम्भकार की ऊगंलियों द्वारा मिट्टी की वस्तु बनाते समय उसमें स्पर्श का अनुभव हम कर लेते हैं लेकिन जब वह कला वस्तु ऐसे दाम में बेची जाती है कि जिससे उसे और उसके परिवार के लोगों को पर्याप्त भोजन मिल सके।

अधिकांश मृत्तिका–शिल्प के विद्वानों का मानना है कि सजावट की वस्तुएँ, वाटर कूलर्स, फूलदान आदि बनाए जाए। अब प्रश्न यह है कि इस प्रकार की वस्तुएं जितनी मात्रा में तैयार की जानी चाहिए और इस प्रकार के विविधीकरण से कितने कुम्भकारों को लाभ होगा? उल्लेखनीय है कि कई तकनीकी सुधारों के पश्चात् अब भी कई कठिनाई तथा तकनीकी समस्याएं सामने आती हैं, जिनका समाधान तत्काल करना आवश्यक है।

कुम्भकार समुदाय का मुख्यतः कार्य (मिट्टी के बर्तन, खिलौने) इत्यादि है। इसके साथ कृषि एवं कृषि संबंधित अन्य कार्यो से भी जीविकोपार्जन करते हैं। प्रत्येक परिवार के लिए कृषि योग्य भूमि कम हो जाने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय है। इसके अतिरिक्त इस समुदाय के व्यक्ति शैक्षणिक रूप से भी पिछड़े हुए हैं।

स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वोत्तम मिट्टी के पात्रों की भी आज के बदलते हुए समाज के परिप्रेक्ष्य में उपेक्षा की जा रही है। वस्तुतः वैश्वीकरण और उदारीकरण के इस युग में मिट्टी के बर्तनों को बेचकर कुम्भकार आज दोनों वक्त का भी भोजन नहीं जुटा पा रहे हैं।

यद्यपि ग्रामीण अंचलों में पारम्परिक कारीगर के रूप में कुम्भकार का उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण स्थान है। तथापि नई तकनालॉजी के आने के पूर्व पारम्परिक तकनीक एवं सांस्कृतिक प्रयोग में लगे ये कुम्भकार अनादि काल से ही हमारी अर्थव्यवस्था के रीढ़ रहे है। अतः पारम्परिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था में उनकी भूमिका गांव को एक स्वावलम्बी इकाई बनाने में रही है।

वस्तुतः पारंपरिक कुम्भकारों की समस्याएं मूलतः सामाजिक और आर्थिक होती हैं, जो समय के साथ बदलती रही उन्हें हल करने हेतु वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाने की अपेक्षा उनके समय विशेष के जीवन–यापन पर निर्भर रही हैं। क्योंकि जीवन–यापन के स्तर के अनुसार ही उनकी कई तकनीकों को ग्रहण करने की क्षमता भी बदलती रही है। अतः उनके लिए नई तकनीके विकसित करते समय हमें उस समय उनके रहन–सहन के स्तर और उनकी क्षमता को ध्यान में रखना आवश्यक है।

उपरोक्त अध्ययन क्षेत्र (मध्य गंगा घाटी) वर्तमान समाज में कृषक समाज (कुम्भकार) में उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहे हैं। वे औद्योगिक समाज की विशेषताओं को ग्रहण करने की प्रक्रिया में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। शिक्षा के प्रसार, यातायात तथा संचार के साधनों के विकास और राजनीतिक जागरूकता के प्रभाव से इस समुदाय में भी... ।किन्तु अभी भी वे औद्योगिक या नगरीय समाज की तुलना में अति सरल और स्वाभाविक दिखाई देते हैं।

संक्षेप में उपर्युक्त अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कुम्भकार समुदाय–धर्म, प्रथा, परम्परा, नैतिकता, रूढ़िवादिता आदि को आज भी संजोए हुए हैं। इस कड़ी में उल्लेखनीय है कि उपरोक्त अध्ययन क्षेत्र के पीढ़ी–दर–पीढ़ी रूप से जुड़े कुम्भकार समुदाय में वैज्ञानिक सत्यता का कोई महत्त्व नहीं है। वस्तुतः इस समुदाय के लोग भाग्यवादी और रूढ़िवादी होते हैं और अपनी परम्पराओं से चिपके रहते हैं और उन्हें नहीं छोड़ना भी नहीं चाहते हैं। वे नवीन प्रौद्योगिकी या तरीकों को भी नहीं अपनाना चाहते जिसके कारण यह समुदाय प्रौद्योगिकी (तकनीकी) रूप से अत्यंत पिछड़ा हुआ हैं। भारतीय समाज में कुम्भकार की स्थिति(स्टेटस) का निर्धारण कहीं जन्म के आधार पर तो कहीं परम्परा के आधार पर होता है। प्राचीन भारतीय हिन्दू समाज व्यवस्था में परम्परागत् कुम्भकार समुदाय एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में उल्लेखनीय है।

कई सामाजिक–आर्थिक लाभों से मुक्त होने के कारण जजमानी प्रथा भारतीय हिन्दू कुम्भकार समाज में बहुत दिनों तक कायम रही और समाज को सुदृढ़ व्यावसायिक एवं आर्थिक आधार प्रदान किया। स्वतंत्रोत्तर काल में समर्थ उच्च जातियों के लोग कुम्भकार जैसे सेवी जाति का शोषण करने लगे। जजमान जो सेवी जातियों के अभिभावक के समान थे। उनके शोषण से सेवी जातियों में असंतोष फैलने लगा, क्योंकि पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त धन उनकी जीविका के लिए पर्याप्त नहीं होता था। वस्तुतः जाति प्रथा के लगभग सभी दोष जजमानी प्रथा में भी पाए जाते हैं, क्योंकि वह मूलतः जाति प्रथा पर ही आधारित उसी का एक रूप है।

मिट्टी के पात्र बनाने की कला संभवतः उतनी ही प्राचीन है जितना

कि मानव इतिहास। इस पृथ्वी पर मानव जीवन के कहानी की इससे अधिक कोई और कला गवाह नहीं है। समय के उतार–चढ़ाव के साथ कई सभ्यताएँ समाप्त हो गई, परन्तु उनका अस्तित्व मिट्टी के पात्रों के रूप में आज भी जीवित है। इसकी सच्चाई के पीछे भी दो कारण है– पहला कारण तो यह है कि मिट्टी विश्व के प्रत्येक भाग में भरपूर मात्रा में आसानी से मिलती है, तथा दूसरा कारण यह है कि मिट्टी की बनी हुई वस्तुएँ जल्दी से खराब नहीं होती हैं। मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए साधारणतया दो प्रकार की मिट्टी उपयोग में आती हैं :

मिट्टी के बर्तनों को बनाने के लिए अलग–अलग प्रकार की मिट्टी

मिट्टी में रेत आदि की मिलावट होने के कारण उसे पकाने के लिए अलग–अलग तापमान और ताप की आवश्यकता होती है। पकाने की सुविधा के अनुसार मिट्टी का चुनाव करने के अतिरिक्त उससे बनने वाली वस्तुओं के अनुसार भी मिट्टी का चुनाव कुम्भकार करता है। उदाहरणार्थ बर्तन यथा नाँद, खाना–पकाने के बर्तन आदि बनाने के लिए काली मिट्टी और छोटे बर्तन यथा– दीपक, प्यालियाँ आदि बनाने के लिए पीली मिट्टी काम में आती है।

मिट्टी तैयार करने की विधि

यद्यपि साधारण कार्यो के लिए कुम्भकार सूखी मिट्टी को मुंगेरी से कूट कर महीन कर लेता है। इसके पश्चात् महीन मिट्टी को 100 नम्बर के चलनी से छान लेता है। छनी हुई मिट्टी को पानी में भिगो देता है। कम से कम दो तीन घंटे पानी में भींगने के उपरान्त आटे की तरह गूथ कर मिट्टी को तैयार कर लेता है। लेकिन अच्छे कार्यो के लिए कुम्भकार मिट्टी को नाँद में भरकर पानी डाल देता है। पानी मिट्टी से कम–से–कम तीन या चार इंच ऊपर रखता है, और इसे मिट्टी को रात भर के लिए छोड़ देता है। तत्पश्चात् नीचे वाली मिट्टी को दूसरी नाँद में भरकर रख देता है, और सबसे नीचे वाली मिट्टी को जिसमे कंकड़, रेत आदि वस्तुएं मिली होती हैं, बाहर निकाल कर फेंक देता है। जब दूसरी नाँद से निकाली हुई मिट्टी सख्त हो जाए तो गोंद का पानी डालकर अच्छी तरह मथ कर तैयार कर लेता है। इस तरह तैयार की हुई मिट्टी के बर्तन आँवा/भट्टी (क्लेम्प) में चटकने नहीं पाते हैं ।

मिट्टी के बर्तन बनाने के उपकरण और उनकी सामग्री

चाक द्वारा बर्तन बनाने के लिए कोई विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं होती हैं। अच्छी तरह और आसानी से घुमाई जाने वाली चाक के अतिरिक्त एक लम्बा तार जो चाक से बर्तन उतारते समय उसे काट कर अलग करने के काम आता है। मॉडलिंग टूल्स, जो बर्तन पर सजावट के लिए धारियाँ आदि डालने के काम आता है, एक चाकू जिसमें तली आदि स्थानों से अतिरिक्त मिट्टी निकाली जाती है। इस प्रकार के उपकरणों की विशेष आवश्यकता होती है। इस पृष्ठभूमि में अन्य आवश्यक सामग्रियों का स्वतंत्र उल्लेख किया गया है।

प्रायः आजकल कुम्भकार तीन प्रकार के बर्तन बनाते हैं एक सादे, दूसरे रंगीन और तीसरे चमकदार। सादे मिट्टी के बरतनों का रंग पीला, भूरा या सिलेटी रहता है। रंगीन बरतनों का रंग चमकता हुआ लाल रंग का होता है और चमकदार बरतन चुनार (जनपद–मिर्जापुर), उत्तर प्रदेश के बरतनों की भाँति चमकदार रहते हैं। चमकदार बरतन प्रायः हरे, नीले, भूरे, काले रंग के मिलते हैं। इस कड़ी में उल्लेखनीय है कि काशी (वाराणसी) में आज भी मिट्टी के बरतनों का व्यवहार और अन्य नगरों की अपेक्षा बहुत अधिक रहता है

इस कड़ी में उल्लेखनीय है कि अध्ययन क्षेत्र (मध्य गंगा घाटी) के पुश्तैनी कुम्भकार गंगा घाटी से प्राप्त चिकनी मिट्टी को अपने हाथों द्वारा गूँथकर तैयार करते हैं और पुनः उन्हें अपने सधे हाथों से मृद्पात्रों का सुघड़ आकार प्रदान करते हैं। विभिन्न पदार्थो जैसे विभिन्न प्रकार की मिट्टी, धातु और प्राकृतिक रंग आदि भी प्राचीन काल की भाँति मिश्रित कर प्रयोग किए जाते हैं।

कुम्भकार के द्वारा बनाया हुआ घड़ा (मटका) प्राचीन आकार–प्रकार का है, उसकी निर्माण क्रिया अनेक पीढ़ियों से चली आ रही है। अतः वंश परम्परागत् है। उसके उपयोग में आने वाली साधन–सामग्री भी स्थानीय एवं प्राचीन है। अतः यह कला वंश परम्परागत् कहलायी। कुम्भकार का उत्तराधिकार अपने पुत्र को देकर जाता है।

सन्दर्भ

1. सिंह, उजागिर, 1978, भारत का आर्थिक एवं प्रादेशिक भूगोल, (प्रथम संस्करण), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 562
2. स्कालिया, एच0 डी0 1965, एक्सकवेषन एट लंघनाजः 1944–63, पार्ट 1, आर्कियोलॉजी, डेकन कालेज, पूना।
3. मिश्र, वी0 एन0 1973, बागोरः ए लेट मेसोलिथिक सेटेलमेंट इन नार्थ वेस्ट इण्डिया, वर्ल्ड आर्कियोलॉजी, वाल्यूम 1, पेज 92–110।
4. पाल, जे0 एन0 1984, इपी–पैलियोलिथिक साइट्स इन प्रतापगढ़ डिस्ट्रिक, उत्तर प्रदेष, मैन एण्ड इनवार्यनमेंट, वाल्यूम 8, पेज 37–38।
5. पंत, डी0 डी0 और पंत, रेखा 1980, प्रिलिमिनरी आबजरवेषन आन पोलेन फ्लोरा आफ चोपनी माण्डो (विन्ध्याज) एण्ड महदहा (गंगा वैली)।
6. शर्मा, जी0 आर0, मिश्रा, वी0 डी0 मण्डल, डी0, मिश्रा बी0 बी0 और, जे0 एन0 पाल 1980, बिगनिंग्स ऑफ एग्रीकल्चर, इलाहाबाद, पेज 229–230।
7. पाण्डेय, जे0 एन0 1985, सेटेलमेंट पैटर्न एण्ड लाइफ इन द मैसोलिथिक पीरिएड इन यू0 पी0, अप्रकाशित डी0 फिल्0 शोध प्रबन्ध, इ0वि0वि0, इलाहाबाद।
8. सिंह, उजागिर, 1978, भारत का आर्थिक एवं प्रादेशिक भूगोल, (प्रथम संस्करण), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 562